International Journal of Jyotish Research: 2019; 4(2): 10-14

ISSN: 2456-4427
Impact Factor: RJIF: 5.11
Jyotish 2019; 4(2): 10-14
© 2019 Jyotish
www.jyotishajournal.com
Received: 10-05-2019
Accepted: 12-06-2019

डॉ. नन्दन कुमार तिवारी
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, ज्योतिष विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखण्ड, भारत

Correspondence
डॉ. नन्दन कुमार तिवारी
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, ज्योतिष विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखण्ड, भारत

सिद्धान्त ज्योतिष : परिचय एवं महत्त्व

डॉ. नन्दन कुमार तिवारी

सारांश
ज्योतिषशास्त्र कालविधायक होने के कारण 'कालशास्त्र' के नाम से भी जाना जाता है। काल का क्षेत्र इतना व्यापक है कि उसमें समस्त सृष्टि समाहित है। कालविहाय किसी भी सृष्टि की कल्पना असम्भव है। ज्योतिषशास्त्र अथवा कालशास्त्र की विहंगमता को देखते हुए लोकबोधाय प्रवर्त्तकों (ऋषियों) ने उसे विभिन्न स्कन्धों में विभक्त किया। ज्योतिषशास्त्र के प्रमुख तीन भाग या स्कन्ध है–सिद्धान्त, संहिता एवं होरा। अभिलक्षण के आधार पर यदि ज्योतिष शास्त्र का विभाजन किया जाय तो मुख्य रूप से तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है। प्रायः ज्योतिषशास्त्रीय अधिकांश आचार्य इस विभाजन से सहमत है। सूक्ष्म अभिलक्षणों की गणना अथवा विवेचन करने पर ज्योतिष का अनेक भागों में विभाजन करना अनिवार्य हो जाता है। किन्तु ये सभी भाग उपरोक्त तीन मुख्य भागों में ही समाहित हो जाते है। उन भागों को अनेक स्थानों में स्कन्ध के नाम से व्यवहार किया गया है।
'सिद्धान्त' शब्द का संस्कृत वाङ्मय में अनेक अर्थ प्राप्त होते है। परिस्थितियों के आधार पर इसका अर्थ ग्रहण किया जा सकता है। ज्योतिष एक प्रायोगिक विज्ञान है। अर्थात् इसमें दिक्, देश एवं काल के अथवा समय, स्थान तथा व्यक्ति के अनुसार नियम परिवर्तित होते है। काल साधन के नियम भी परिवर्तन शील है। काल साधन के नियमों के साथ -साथ परिवर्तन के नियमों को स्थिति के अनुसार प्रयुक्त करने का निर्देश सिद्धान्त देता है। अर्थात् सिद्धान्त विभिन्न नियमों का समाहार है और उन नियमों के प्रयोग करने पर प्राप्त होने वाला फल विलक्षणता को धारण करता है। वह फल स्थान दिशा और काल पर आधारित होता है। यदि संक्षेप में कहना है तो काल साधन हेतु प्रयुक्त प्रयोगों का नियामक है सिद्धान्त ज्योतिष। अन्य रूप में, ज्योतिषशास्त्रोक्त काल की सूक्ष्मतम इकाई 'त्रुटि' से लेकर प्रलयान्त पर्यन्त की गयी काल गणना जिस स्कन्ध के अन्तर्गत किया जाता है, उसका नाम है – सिद्धान्त ज्योतिष।

कूट शब्द: कालशास्त्र, सिद्धान्त, स्कन्ध, असकृत्, त्रुटि, प्रलयान्त, अनन्त, वेत्ति आदि

प्रस्तावना
सिद्धान्त के नाना प्रकार की परिभाषाओं में अन्यतम है "सिद्ध: अन्ते यस्य स: सिद्धान्त:" का सिद्धान्त। अर्थात् प्रयोगादि असकृत् व वारं वार क्रियाकलापों के अन्त में जो फल सिद्ध हुआ उसे भी 'सिद्धान्त' कहा जा सकता है। कतिपय आचार्य गणित ज्योतिष अथवा सिद्धान्त ज्योतिष को एक ही मानते है। परन्तु शाब्दिक दृष्टिकोण के साथ-साथ उनके मूल में भी अन्तर है, ऐसा मैं समझता हूँ। यथा–गण्यते संख्यायते तद् गणितम्। गणित संख्यात्मक गणना करने पर प्राप्त होता है। सिद्धान्त जटिलताओं को दूर करते हुए अन्त में जाकर सिद्ध होता है। कदाचित् इसीलिए गणित एवं सिद्धान्त दो अलग-अलग शब्द/विभाग हैं। वस्तुत: दोनों में कोई व्यापक अन्तर नहीं है। प्रचलन में दोनों को एक ही मानते हैं।
'सिद्धान्त' उलझन से सुलझने का मार्ग है। उदाहरणार्थ जैसे एक से दो ग्राम भार वाली पिन को पानी में डालने पर डूब जाती है। किन्तु 500 टन लोहे का जहाज पानी में नहीं डूबता है। यदि सोचे कैसे सम्भव है तो साधारण रूप से असम्भव लगता है। वह जहाज किस कारण से नहीं डूबता है? नही डूबने के लिये उसका निर्माण कैसे करना है? किन-किन नियमों का पालन करना है? उसका लम्बाई चौडाई गहराई आदि का नाप क्या होना है? इन प्रश्नो का उत्तर जो मिलता है वहीं सिद्धान्त कहलाता है। कार्य क्यों हुआ? कैसे हुआ? होने के लिये क्या कारण है? इन प्रश्नो का निर्माण कर उनका उत्तर यदि सफल परीक्षण के साथ प्राप्त करते है तो उन उत्तरों के समूह अथवा समाधान को सिद्धान्त कह सकते है।
इसी प्रकार से ग्रहों की गति एवं स्थिति के आधार पर अनेक प्रकार की युक्तियों का प्रयोग करके काल का साधन किया जाता है। इसी काल साधन विधि के सिद्धान्त ग्रन्थों में ग्रन्थकार विभिन्न मार्गों में समझाने का प्रयास किये है। अनेक प्रकार की युक्तियों के समूह को भी इस सन्दर्भ में सिद्धान्त कह सकते हैं।

सिद्धान्त के महत्त्व के सन्दर्भ में आचार्य भास्कराचार्य सिद्धान्तशिरोमणि में लिखते है

यः सिद्धान्तमनन्तयुक्ति विततं नो वेत्ति भित्तौ यथा।

इस वाक्य में सिद्धान्तं अनन्तयुक्ति वितंत इस खण्ड पर ध्यान देने से उपरोक्त वाक्य स्पष्ट हो जाते है। मध्यम ग्रह को स्पष्ट ग्रह बनाने के लिये जितने उपायों की आवश्यकता होती है उन सभी उपायों के समूह को 'सिद्धान्त' कहते हैं।

यः (जो) अनन्तयुक्तिवितंत (अनन्त युक्तियों से युक्त) न वेत्ति (नहीं जानता है) वह दीवार पर बनाये गये राजा के चित्र के बराबर होता है। अर्थात् राजा का चित्र जैसे राजा नहीं हो सकता है उसी तरह जातक आदि जानकर भी सिद्धान्त की युक्तियों को नहीं जानने वाले की स्थिति होती है।

गणित तथा गोल के सामंजस्य को सिद्धान्त कहते हैं

कालसाधन ग्रहों के आधार पर होता है। ग्रहों का साधन दो प्रकार से होता है। एक गणित से तथा दूसरा प्रत्यक्ष वेध से। गणित से ग्रह का साधन करने के लिये व्यक्त और अव्यक्त संज्ञाओं से विभक्त गणित का ज्ञान अपेक्षित है। वेधप्रक्रिया को अपनाने के लिये गोल का ज्ञान अपेक्षित है। गणित तथा गोल से एक ही फल यदि प्राप्त होता है तो उसे स्पष्ट कहते है। अतएव स्पष्टग्रहसाधन में गणितागत तथा दृगुपलब्ध दोनों ग्रहों का सामंजस्य अपेक्षित है। इसी सामंजस्य को सिद्ध करने के लिये जिन उपायों का वर्णन किया गया है उन सभी को समष्टि रूप से 'सिद्धान्त' कहते है। अर्थात् सिद्धान्त ज्योतिष से सम्बन्धित ग्रन्थों में गणितागत तथा दृगुपलब्ध ग्रहों की एकता साधन के लिये अनेक प्रकार के उपाय बताये गये है।

गणितागत तथा दृगुपलब्ध ग्रहों की एकता को ही 'स्पष्ट ग्रह' कहते है तथा स्पष्ट ग्रहों से ही अभीष्ट फल की सिद्धि होती है। इस सन्दर्भ में कुछ आचार्यों के वाक्य यहां प्रस्तुत हैं जो ग्रहस्पष्टीकरण के लिये उत्पन्न सिद्धान्त ज्योतिष के आन्तर्य को और स्पष्ट कर सकते हैं।

आचार्य भास्कराचार्य के अनुसार

यात्राविवाहोत्सवजातकादौ खैटैः स्फुटैरेव फलस्फुटत्वम्।
स्यात्प्रोच्यते तेन नभश्चराणां स्फुटक्रिया दृग्गणितैक्यकृद्द्या॥[1]

यात्रा, विवाह, जातक आदि में स्पष्टग्रहों से ही स्पष्ट फल प्राप्त होता है। अतः स्पष्टग्रहों का ही प्रयोग अभीष्ट है। उसी सन्दर्भ में आचार्य कहते है स्फुटक्रिया दृग्गणितैक्यकृद्द्या। या दृक् गणितयोः ऐक्यकृत् सा स्फुटक्रिया। अर्थात् जो प्रक्रिया दृक् तथा गणित से प्राप्त फलों का एकीकरण का मार्ग बताती है वही स्पष्टीकरण प्रक्रिया है। इसी वाक्य से स्पष्ट होता है कि ग्रह साधन गणित और गोल के सामंजस्य से उत्पन्न होता है।

सूर्यसिद्धान्त में

तत्तद्गतिवशान्नित्यं यथा दृक्तुल्यतां ग्रहाः।
प्रयान्ति तत्प्रवक्ष्यामि स्फुटीकरणमादरात्॥[2]

सूर्यसिद्धान्त नामक सिद्धान्त ज्योतिष के ग्रन्थ में ग्रहस्पष्टीकरण प्रक्रिया के सन्दर्भ में आचार्य द्वारा प्रस्तुत यह वाक्य ग्रहस्पष्टीकरण प्रक्रिया के महत्त्व को तथा सिद्धान्त ज्योतिष के उद्देश्य को स्पष्ट कर देता है। तत्प्रवक्ष्यामि स्फुटीकरणमादरात् । तत् स्फुटीकरणं आदरात् प्रवक्ष्यामि। मै उस स्पष्टीकरण को आदर से बताता हूँ। किस स्पष्टीकरण को? यथा दृक्तुल्यतां ग्रहाः प्रयान्ति। जैसे ग्रह दृक्तुल्यता को प्राप्त करते है? सूर्य सिद्धान्त के इन वचनों से भी गणित तथा गोल का सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है तथा उसी सम्बन्ध के आधार पर गणितागत ग्रहों को दृक्तुल्य ग्रह बनाने की विधि भी बताई गई है। सूक्ष्मरूप से बताया जाय तो इस सम्पूर्ण प्रक्रिया में मार्गदर्शन करने का कार्य ही सिद्धान्त ज्योतिष करता है।

विभिन्न आचार्यों के मत में सिद्धान्त

ज्योतिष शास्त्र के अनेक आचार्य हैं। इस शास्त्र के मुख्य रूप से अट्ठारह प्रवर्तक माने जाते हैं। उन सभी प्रवर्तक आचार्यों की तीनों स्कन्धों में कृतियाँ प्राप्त नहीं होती हैं। उन आचार्यों में तथा उनके अनन्तर काल में जिन जिन आचार्यों ने सिद्धान्त ज्योतिष के बारे में अथवा ज्योतिष के स्कन्धों के बारे में चर्चा की है उन आचार्यों का तथा उनके द्वारा प्रस्तुत चर्चा की संक्षेप प्रस्तुति यहा की जा रही है। इस से सिद्धान्त ज्योतिष से सम्बन्धित जानकारी और सुदृढ हो सकती है।

आचार्यों में कुछ के नाम इस प्रकार से है। नारद, वसिष्ठ, ब्रह्मगुप्त, आर्यभट, भास्कराचार्य, लल्ल, श्रीपति, मुञ्जाल आदि। सबसे पहले ज्योतिष का ज्ञान ब्रह्मा को हुआ। ब्रह्मा ने नारद को तथा नारद ने शौनक को एवं शौनक ने आगे की श्रेणियों को यह ज्ञान प्रदान किया। प्रवर्तकों की श्रेणी में महर्षि नारद और वसिष्ठ आदि आते हैं। आचार्य आर्यभट को प्रथम पौरुष ज्योतिष ग्रन्थकार कहते हैं। अर्थात् महर्षियों की श्रेणी के बाद जो मानव मात्र ज्योतिष शास्त्र में ग्रन्थ रचना करने का प्रयास किया उनमें पप्रथम व्यक्ति आचार्य आर्यभट है। आर्यभट के ही समय के आचार्य रहे आचार्य वराह मिहिर। इस नाम से सभी विदित ही हैं। इनके कुछ समय के बाद क्रमशः लल्ल मुञ्जाल, श्रीपति, ब्रह्मगुप्त, भास्कराचार्य जैसे आचार्य उत्पन्न हुए जो सिद्धान्त ज्योतिष को नई दशा और दिशा प्रदान किये।

उन आचार्यों में से तथा उन ग्रन्थों में से सिद्धान्त को स्पष्ट करने वाली कुछ उक्तियां यहाँ प्रस्तुत हैं। प्रदत्त सन्दर्भ प्रायः सभी आचार्यों के मत को दर्शाते हैं।

बृहत्संहिता में

ज्योतिश्शास्त्रमनेकभेदविषयं स्कन्धत्रयाधिष्ठितम्।
तत्कात्स्न्योपनयस्य नाम मुनिभिः संकीर्त्यते संहिता॥
स्कन्धेस्मिन् गणितेन या ग्रहगतिस्तन्त्राभिधानस्त्वसौ
होरान्योङ्गविनिश्चयश्च कथितः स्कन्धस्तृतीयोपरः॥[3]

अनेक प्रकार के विषयों से संवलित ज्योतिष शास्त्र को तीन मुख्य स्कन्धों में विभक्त किये है। उनका इस प्रकार से विभक्त करने का आधार उनकी उपयोगिता ही है। निरवशेष जहाँ पर उन विषयों का वर्णन किया जाता है उसे संहिता स्कन्ध कहते है। जिस स्कन्ध में गणित के आधार पर ग्रहों का साधन किया जाता है उसे तन्त्र अथवा सिद्धान्त कहते है। अंग विनिश्चय अर्थात् अंग यानी लग्न का विनिश्चय यानी निर्णय जहां होता है उसे होरा कहते है।

इस श्लोक में आचार्य स्पष्ट कर चुके है कि जहां पर गणित के आधार पर ग्रहों का साधन होता है उसे सिद्धान्त या तन्त्र कहते है। गणित के आधार पर ग्रहों का साधन अनेक प्रकार के युक्तियों के आधार पर होता है। गणित का जहाँ प्रयोग होता है वहाँ पर लक्ष्य सिद्धि हेतु एक से अधिक मार्ग होते है तथा ये सभी युक्ति अथवा तर्क के अधीन होते है। अतः स्पष्ट रूप से अनेक प्रकार के युक्तियों का प्रयोग जहां किया जाता है उसे सिद्धान्त कहा जाता है।

आचार्य भास्कराचार्य प्रणीत सिद्धान्तशिरोमणि में

सिद्धान्तशिरोमणि में वर्णित सिद्धान्त का लक्षण बहुविस्तृत तथा सरल है। इस वर्णन में सिद्धान्त ज्योतिष का क्रमशः उद्धरण प्राप्त होता है-

त्रुट्यादिप्रलयान्तकालकलना मानप्रभेदः क्रमा-
च्चारश्च द्युसदां द्विधा च गणितं प्रश्नास्तथा सोत्तराः।
भूधिष्ण्यग्रहसंस्थितेश्च कथनं यन्त्रादि यत्रोच्यते
सिद्धान्तस्स उदाहृतोत्र गणितस्कन्धप्रबन्धे बुधैः॥[4]

जिस स्कन्ध में

- काल का आरम्भ त्रुटि से तथा अन्त प्रलय से होता है। अर्थात् काल का अत्यन्त सूक्ष्मविभाग त्रुटि है तथा अत्यन्त विशालतम इकाई की समाप्ति प्रलय से होती है। प्रारम्भिक अवयव से अन्तिम अवयव तक काल की कलना पद्धति जहाँ वर्णित है तथा जहाँ पर उस प्रकार के काल का साधन करने की विधि बतायी गयी हो।
  (त्रुट्यादिप्रलयान्तकालकलना)
- ब्राह्म, दिव्य, पित्र्य, प्राजापत्य, गौरव, सौर, सावन, चान्द्र और आर्क्ष नामक नवविध कालमानों का वर्णन जहाँ पर किया गया हो।

(मानप्रभेदः)

- द्युसदां अर्थात् आकाश में वास करने वाले ग्रहों का चार (गति) जहाँ बताया गया हो।
  (चारश्च द्युसदां)
- दो प्रकार के गणित का जहाँ विशद वर्णन हो।
  (द्विधा च गणितं)
- उत्तर सहित प्रश्न जहाँ पर हो।
  (प्रश्नास्तथा सोत्तराः)
- भूमि के अभिप्राय से ग्रहों की स्थिति जहाँ पर वर्णित हो।
  (भूधिष्ण्यग्रहसंस्थितेश्च कथनं)
- यन्त्रों का वर्णन किया गया हो।
  (यन्त्रादि यत्रोच्यते)

ज्योतिष के उस भाग को गणित प्रबन्ध में बुद्धिमानों ने सिद्धान्त नामक संज्ञा दी। (सिद्धान्तस्स उदाहृतोत्र गणितस्कन्धप्रबन्धे बुधैः - सः गणितस्कन्धप्रबन्धे बुधैः सिद्धान्त इति उदाहृतः)

सूर्यसिद्धान्त में

तत्तद्गतिवशान्नित्यं यथा दृक्तुल्यतां ग्रहाः।
प्रयान्ति तत्प्रवक्ष्यामि स्फुटीकरणमादरात्।।

अपनी अपनी कक्षाओं की विलक्षणता के कारण आठ प्रकार की गति के साथ राशि चक्र में चलने वाले ग्रह जिस तरीके से दृक्तुल्यता को प्राप्त करते हैं उस स्फुटीकरण नामक प्रक्रिया को मै (सूर्यांशपुरुष) बताता हूँ।

ग्रह अपने कक्षाओं में विभिन्न प्रकार की गतियों से भ्रमण करते हैं। ग्रह गति के वर्णन से सम्बन्धित पाठ में ग्रह गति का सम्पूर्ण विवरण प्राप्त करेंगे। सामान्य जानकारी के लिये ग्रहों की आठ प्रकार की गतियों के नाम यहाँ पर उल्लिखित है। वैसे तो उनका नाम ही उनके लक्षणों को प्रतिबिम्बित कराने में पर्याप्त है।

आठ प्रकार की ग्रह गति

वक्रातिवक्रा विकला मन्दा मन्दतरा समा।
तथा शीघ्रतरा शीघ्रा ग्रहाणामष्टधा गतिः।।[5]

वक्रा, अतिवक्रा, विकला , मन्दा, मन्दतरा, शीघ्रा, शीघ्रतरा, समा ये ग्रह की आठ प्रकार की गतियाँ हैं।

कालगणना

सिद्धान्त की परिभाषा के सन्दर्भ में ९ प्रकार के कालमानों की चर्चा की गई। उन कालमानों को और सूक्ष्म रूप से समझने की कोशिश करने पर ग्रहों के आधार पर कालगणना करने का तात्पर्य भी समझ में आ जाता है।

सूर्य को राशिचक्र का पूरा भ्रमण करने के लिये एक वर्ष का समय लगता है। क्षेत्र तथा काल के समान विभागों की बात को यहाँ एक बार स्मरण करना है। क्षेत्र विभाग में सबसे बडा विभाग राशि चक्र है। उसके बराबर का काल विभाग है वर्ष। सूर्य को राशि चक्र में भ्रमण करने के लिये व सूर्य को राशि चक्र का एक चक्कर पूरा करने के लिये जो समय लगता है वह काल विभाग के सबसे बडे अवयव (हिस्सा) वर्ष के बराबर है। उसे सौर वर्ष कहते है। सौर वर्ष का बारहवाँ भाग सौरमास कहलाता है। अर्थात् इस समय में सूर्य एक राशि का भोग करता है। सौरमास का तीसवा भाग एक सौर दिन कहलाता है।

इसी प्रकार से अन्य ग्रहों के सन्दर्भ में भी विचार करना है। सूर्य और चन्द्रमा की युति को अमावास्या कहते है। सूर्य और चन्द्रमा की यह युति मीन राशि में होने के बाद पुनः मीन राशि में होने तक एक चान्द्र वर्ष होता है। मीन राशि में संगम के बाद प्रत्येक राशि में सूर्य और चन्द्रमा की प्रत्येक युति एक एक चान्द्रमास को दर्शाती है। सूर्य से आगे बढकर अधिक गतिमान चन्द्रमा लगभग २९ दिनों के अन्तराल में पुनः सूर्य को प्राप्त कर लेता है। चन्द्रमा का गति विलक्षण होने के कारण यहाँ पर सूर्य और चन्द्र के 360 अंशों के अन्तर को तीस भागों में विभक्त कर चान्द्रदिनों का व्यवहार किया जाता है। 360 को तीस से भाग देने पर 12 अंश प्राप्त होते है। सूर्य चन्द्रमा के प्रत्येक बारह अंश के अन्तराल को तिथि कहते है तथा तिथि को ही चान्द्र दिन कहते है।

इसी प्रकार से ग्रहों की गति के आधार पर कालावयवों की गणना करने की प्रथा सिद्धान्त ज्योतिष के रूप में अनादि काल से प्रचलित है। सौरवर्ष की भांति गौरववर्ष आदि भी विचारणीय है। इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि काल साधन करने के लिये तथा काल के विविध अवयवों का अनुमान लगाने के लिये ग्रहों का सहारा लिया जाता है।

इस सन्दर्भ में आचार्य आर्यभट की उक्ति स्मरणीय है

कालोयमनादिरनन्तः ग्रहभैरनुमीयते क्षेत्रे।

काल अनादि और अनन्त है तथा उस काल का ग्रहों और राशियों के आधार पर क्षेत्र में अनुमान लगाया जाता है।

ग्रह साधन व कालसाधन में सिद्धान्त

सिद्धान्त स्कन्ध का मुख्योद्देश्य काल का साधन है। काल के साधन हेतु ग्रहों का साधन किया जाता है। ग्रहों के साधन से तात्पर्य है भूकेन्द्राभिप्रायिक ग्रह स्थिति। अर्थात् भूमि के दृष्टि कोण में चारों ओर परिकल्पित क्षेत्र व राशिचक्र में ग्रह की कोणीय स्थिति को ग्रह स्थिति कहते हैं तथा उसी स्थिति के आधार पर समय का साधन किया जाता है।

सिद्धान्त ज्योतिष मुख्य रूप से काल साधन करने के लिये ग्रहों का साधन करता है। इस बात को और सूक्ष्मता के साथ जानने के लिये एक जिज्ञासा को शान्त करना आवश्यक है। वह जिज्ञासा है "काल साधन ग्रहों की स्थिति के आधार पर कैसे किया जाता है?"

काल स्थान सापेक्ष व व्यक्ति सापेक्ष होता है। यह बहुत गम्भीर विषय लगता है। सिद्धान्त ज्योतिष को समझने के लिये इस गम्भीर विषय को सरलता से समझने का प्रयास करना आवश्यक है। एक पंक्ति में भोजन करने चार लोग बैठे है। पंक्ति में पहला व्यक्ति भोजन 15 मिनट के समय में, दूसरा 20 मिनट में, तीसरा 40 मिनट में तथा चौथा 60 मिनट में पूरा करता हैं। इसको इस तरीके से दोबारा पढने का कोशिश कीजिये। भोजन पूरा करने में पहले व्यक्ति को 15 मिनट का , दूसरे को 20 का , तीसरे को 40 का तथा चौथे को 60 मिनट का समय लगा। यहाँ भोजन का पूरा करना व्यक्ति सापेक्ष रहा।

इसी प्रकार से सूरज प्रत्येक स्थान में अलग अलग उदय होता है। प्रत्येक स्थान में उदय तथा अस्त का अन्तराल अलग अलग होता है। जब एक स्थान में सूर्योदय और अस्त के बीच का समय लगभग 12 घंटे का है उसी समय दूसरे स्थान में वह समय छ महीने का भी हो सकता है। कुछ स्थानों में 60 दिन का भी हो सकता है और कुछ स्थानों में 60 घटी का भी हो सकता है। सूरज तो वही है। उसकी गति भी सब के लिये बराबर है। किन्तु गोलाकार पृथ्वी में अन्य पिण्डों के भ्रमण के कारण उत्पन्न होने वाली परिस्थिति अलग अलग है।

सिद्धान्त स्कन्ध इसी विलक्षणता को अनेक माध्यमों से समझाने का प्रयास करता है। अनेक प्रकार से एक ही काल का साधन बताये जाने के पीछे सत्यापन विधि मुख्य कारक है। एक से प्राप्त काल का सत्यापन दूसरे विधान से प्राप्त कालखण्ड से होता है।

समान विभाग

पृथ्वी के चारों ओर जिस वृत्त की कल्पना काल साधन हेतु की गई है उसको क्षेत्र कहते है। कल्पना शब्द का प्रयोग शास्त्र के लिये समस्यापूर्ण नहीं है। वास्तव में चारों और राशि चक्र में दिखने वाली राशियाँ तारों के समूह के कारण उत्पन्न खगोलीय दृश्य है। इनका वर्णन प्राच्य (पूरब के देशों) में और पाश्चात्य (पश्चिमी देशों) में अनेक प्रकार से किया गया है। अनेक वर्णनों में मतभेद भी है। अतः राशिचक्र को व समय साधन हेतु निर्णीत वृत्ताकार स्थान को कल्पना कहना अनुचित नहीं है।

इस क्षेत्र को कालविभागों के अनुरूप विभक्त किया गया है। वे विभाजन इस प्रकार से है-

क्षेत्र विभाग	काल विभाग
राशिचक्र (360 अंश)	वर्ष (360 दिन)
राशि (बारहवाँ भाग)	मास (बारहवाँ भाग)
अंश (राशि का तीसवाँ भाग)	दिन (मास का तीसवाँ भाग)
कला (अंश का साठवाँ भाग)	घटी (दिन का साठवाँ हिस्सा)

इन विभागों में ग्रहों की गति के आधार पर काल के विभाग कलित होते है। अर्थात् क्षेत्र वा राशिचक्र में ग्रहों की गति काल के विभिन्न घटकों की कलना (गणना) करने में सहयोग करते है।

सिद्धान्त की तीन मुख्य परम्परा

सिद्धान्त ज्योतिष का मुख्य उद्देश्य काल साधन ही है। काल का साधन ग्रहों के आधार पर क्षेत्र (राशि -चक्र) में किया जाता है। कालक्रम में भारत में कालगणना की तीन मुख्य परम्परा उत्पन्न हुये। उन तीन परम्पराओं का नाम है आर्य, सूर्य तथा ब्राह्म। आर्यभट के सिद्धान्त के अनुसार काल गणना करने वालों को आर्यसिद्धान्त के अनुयायी, सूर्य सिद्धान्त के अनुसरण करने वालों को सूर्यानुयायी तथा ब्रह्मसिद्धान्त का अनुसरण करने वालों को ब्रह्मसिद्धान्तानुयायी कहते हैं।

आर्य परम्परा

आर्यभट की एक मात्र कृति आर्यभटीयम् नाम से प्रसिद्ध है। यह ग्रन्थ केवल सिद्धान्त ज्योतिष के ही विषयों का वर्णन करता है। इसमें आर्यभट काल को अनादि और अनन्त मानते है तथा उपदेश देते है कि काल का अनुमान क्षेत्र (राशिचक्र) में ग्रह और राशियों के आधार पर लगाया जाता है।

कालोयमनादिरनन्तः ग्रहभैरनुमीयते क्षेत्रे।

अपने मंगलाचरण में आर्यभट्ट लिखते हैं

आर्यभटस्त्रीणि गदति गणितं कालक्रियां गोलं च।

अर्थात् आर्यभट गणित कालक्रिया और गोल नामक तीन विषयों को बता रहें हैं। गणित काल साधन का मूलाधार है। गणित के ज्ञान के बिना काल गणना की नहीं जा सकती है। ज्ञानियों का एक पक्ष का मानना है कि बीजगणित के आविष्कारक आर्यभट ही हैं। अपने ग्रन्थ के गणित पाद में आर्यभट अनेक प्रकार के गणितीय विषयों का उल्लेख किये हैं जो उनके पूर्ववर्ती आचार्यों की कृतियों में देखने को नहीं मिलता है। उनमें से कुछ है व्यास और परिधि का सम्बन्ध, दशमलवपद्धति, दशोत्तरसंख्यामान आदि। शून्य के भी आविष्कारक के रूप में आर्यभट आजके विद्वानों में प्रसिद्ध है।

अन्य सिद्धान्तों से आर्यभट का सिद्धान्त मुख्य रूप से मन्वन्तर प्रमाण में मतभेद रखता है। अन्य सिद्धान्तों में एक मनु का अन्तर 71 महायुग का है वहीं आर्यभट मनु को 72 महायुग का मानते है। इसके अतिरिक्त अनेक सिद्धान्त है जो आर्यभट के सिद्धान्त में देखने को नहीं मिलते हैं। उदाहरण के लिये अयनांश विचार को लिया जा सकता है। आज प्रबल विवादांश के रूप में प्रचलित अयनांश का किसी भी रूप में वर्णन आचार्य आर्यभट नहीं किये हैं।

आर्यभट के समय के पहले ही ज्योतिष के तीनों स्कन्धों का प्रचार प्रसार था। किन्तु आर्यभट के द्वारा कहीं भी फलित ज्योतिष आदि का विचार नहीं किया गया। अपनी कृति में आर्यभट लिखते हैं कि वे सत् और असत् ज्ञान से युक्त समुद्र से सत् का ग्रहण कर वर्तमान सिद्धान्त बनायें हैं। इससे प्रतीत होता है कि आर्यभट फलादेश आदि विधाओं का विरोध करते हैं।

ब्राह्मपरम्परा

ब्रह्मसिद्धान्त का मूल विष्णुधर्मोत्तर पुराण में बताया जाता है। प्रवर्तकों के वर्णन के समय में भी आचार्य लोग वर्णन करते है कि सब से पहले ज्योतिष का ज्ञान ब्रह्मा को हुआ तथा ब्रह्मा ने इस विद्या को आगे के लोगों को प्रदान किया। ब्रह्म सिद्धान्त की मुख्य विशेषता है सृष्टि और कल्प के मध्य में अन्तर को नहीं मानना।

अर्थात् ब्रह्मसिद्धान्त में कल्पारम्भ ही सृष्ट्यारम्भ भी है। सूर्य सिद्धान्त में कहा गया है कि कल्पारम्भ के बाद ब्रह्मा को सृष्टि करने के लिये कुछ समय लगा। किन्तु इस बात को ब्रह्मसिद्धान्त स्वीकार नहीं करता है। ब्रह्म सिद्धान्त का अनुपालन करते हुए ब्रह्मगुप्त ब्रह्मस्फुटसिद्धान्त का निर्माण किया तथा ब्रह्मस्फुटसिद्धान्त काल क्रम में सत्यदूर होने के कारण आचार्य भास्कर कुछ संशोधन तथा कुछ नये सिद्धान्तों के साथ सिद्धान्तशिरोमणि का निर्माण किया।

सौर परम्परा

सूर्यसिद्धान्त का अनुपालन ग्रह तथा काल साधन आदि में जो करते है उनकी परम्परा सूर्य या सौर परम्परा कहलाती है। सूर्यसिद्धान्त के नाम से भारतीय ज्योतिष में अनेक ग्रन्थ प्रचलन में रहे। आचार्य वराह मिहिर के द्वारा संगृहीत एक सूर्यसिद्धान्त है। भटोत्पल के द्वारा अपनी रचनाओं में प्रयुक्त सूर्यसिद्धान्त के अंश किसी दूसरे सूर्यसिद्धान्त के हैं। वर्तमान में प्रचलित सूर्यसिद्धान्त उपरोक्त दोनों से भी भिन्न है। तथा अन्य आचार्यों की व्याख्याओं में भी सूर्यसिद्धान्त का प्रसंग है जो यहां पर प्रस्तुत तीनों सूर्यसिद्धान्तों से भिन्न माने जाते हैं। अतः सूर्यसिद्धान्त के नाम से प्रचलित होने वाले सिद्धान्त तीन से अधिक माने जाते हैं। सूर्यांश पुरुष के द्वारा मयासुर को प्रबोधित सिद्धान्त ही सूर्यसिद्धान्त के नाम से वर्तमान में प्रसिद्ध है तथा वर्तमान में निर्मित अधिकांश पंचांग सूर्य सिद्धान्त का ही अनुसरण करते हैं।

आचार्य गणेश दैवज्ञ जी ने स्वग्रन्थ ग्रहलाघव में तीनों परम्पराओं का उल्लेख करते हुए ग्रहों की स्थिति का वर्णन किया है –

सौरोऽर्कोऽपि विधूच्चमङ्ककलिको नाब्जो गुरूस्त्वार्यजो
ऽसृग्राहू च कजं ज्ञकेन्द्रकमथार्ये सेषु भाग: शनि:।।
शौक्रं केन्द्रमजार्य मध्यगमितीमे यान्ति दृक्तुल्यताां।
सिद्धैस्तैरिह पर्वधर्मनयसत्कार्यादिकं त्वादिशेत्।।[6]

यहाँ आचार्य ने किस सिद्धान्त में किस ग्रह की स्पष्टता दृग्गणित के आसन्न होती है इसका विवेचन करते हुए लिखा है कि सूर्यसिद्धान्त के अनुसार साधित सूर्य तथा चन्द्रोच्च दृश्य गणित से साम्य रखते हैं। इसी से साधित स्पष्टचन्द्र से ९ कला घटाने पर दृश्य चन्द्र हो जाता है। आर्य सिद्धान्त के अनुसार साधित मंगल, गुरु तथा राहु दृक्तुल्य होते हैं। ब्राह्म सिद्धान्त के अनुसार साधित बुधकेन्द्र शुद्ध होता है। आर्यसिद्धान्त के अनुसार स्पष्ट शनि में ५ अंश जोड़ने से वह भी दृक्तुल्य हो जाता है। शुक्र केन्द्र ब्रह्मसिद्धान्त और आर्यसिद्धान्त के मध्यम मान के तुल्य शुद्ध होता है।

सिद्धान्त ज्योतिष का महत्त्व

गणित कालक्रिया और गोल का सामंजस्य स्थापित करना ही सिद्धान्त ज्योतिष की मुख्य प्रवृत्ति है। ये तीनों विषय आपस में अन्योन्याश्रय सम्बन्ध को रखते है। अर्थात् ये तीनों की युगपत् (एक साथ) स्थिति हो सकती है तथा अलग अलग इनका अस्तित्व नहीं है। काल गणित तथा गोल पर आश्रित है।

ग्रहों की स्थिति गति आदि विषय केवल काल साधन में ही नहीं बल्कि ज्योतिष के सिद्धान्त के अतिरिक्त स्कन्धों के लिये भी महत्त्वपूर्ण है। फलादेश हेतु स्पष्टग्रहों की आवश्यकता होती है तथा ग्रहों के चार (गति) के आधार पर प्राकृतिक आपदाओं आदि का ज्ञान किया जाता है।

सिद्धान्त ज्योतिष की विशेषता

सिद्धान्त के निर्वचन से सम्बन्धित जानकारी इस इकाई के प्रारम्भ में प्राप्त किये है। सिद्धान्त का कोई एक वाक्य में अथवा एक दृष्टि में निर्वचन नहीं हो सकता है। अर्थात् काल साधन के तत्त्व को अवगत कराने की प्रक्रिया ही सिद्धान्त कहलाता है। कालतत्त्व को जानने के लिये अनेक अवयव, विषय व विभागों का परिचय प्राप्त करना होता है इसकी जानकारी इकाई के अब तक वर्णित विषय से प्राप्त होती है।

इसी सन्दर्भ में अनेक प्रकार के उदाहरणों तथा उपमानों के साथ गोल के अभाव में गणित की स्थिति का वर्णन किये है आचार्य भास्कर जो सिद्धान्त के वैशिष्ट्य को अभिवर्णित करते है।

जानन जातकसंहिताः सगणितस्कन्धैकदेशा अपि
ज्योतिश्शास्त्रविचारसारचतुरप्रश्नेष्वकिञ्चित्करः।
यः सिद्धान्तमनन्तयुक्तिवितंत नो वेत्ति भित्तौ यथा
राजा चित्रमयोथवा सुघटितः काष्ठस्य कण्ठीरवः।।[7]

जातक (होरा) और संहिता स्कन्धों को जानकर भी जो अनेक प्रकार की युक्तियों से युक्त सिद्धान्त को नहीं जानता है वह दीवार पर खींचे गये राजा के चित्र के समान तथा लकडी के बनाये गये सिंह जैसे ज्योतिशास्त्र के विचारों से सम्बन्धित प्रश्नों में अकिंचित्कर अर्थात् कुछ भी नहीं कर पाने वाला होगा।
अर्थात् दीवार पर चित्रित राजा जिस प्रकार से शासन नहीं कर सकता, लकडी का बना सिंह जिस प्रकार से दहाड नहीं सकता उसी तरह जो सिद्धान्त नहीं जानता है वह ज्योतिषशास्त्र के विचारों से युक्त प्रश्नों का उत्तर नहीं दे सकता है। ज्योतिषशास्त्रज्ञ बनने के लिये सिद्धान्त ज्ञान अनिवार्य है।

गर्जत्कुञ्जरवर्जिता नृपचमूरप्यूर्जिताश्वादिकै-
रुद्यानं च्युतच्यूतवृक्षमथवा पाथोविहीनं सरः।
योषित् प्रोषितनूतनप्रियतमा यद्वन्नभात्युच्चकै-
र्ज्योतिःशास्त्रमिदं तथैव विबुधाः सिद्धान्तहीनं जगुः।।[8]

राजा की सेना अश्वों से युक्त होने पर भी गरजने वाले हाथियों के अभाव में जिस प्रकार से प्रभाव हीन होती है, आम के पेड से रहित उद्यान जैसे प्रभाव हीन होता है, जिस प्रकार राह से रहित नदी की स्थिति होती है, पति से दूर रह रही स्त्री का सौन्दर्य जिस तरह किसी काम का नहीं होता है उसी तरह सिद्धान्त ज्योतिष के ज्ञान से रहित ज्योतिषशास्त्रज्ञ की स्थिति होती है।

गणित और गोल का अन्योन्याश्रयत्व

मध्यम ग्रह और स्पष्ट ग्रह की एकता साधन ही ग्रह स्पष्टीकरण है। मध्यम ग्रह साधन हेतु गणित का ज्ञान अपेक्षित है। गणित दो प्रकार का होता है। ग्रह की दृगुपलब्धि के लिये गोल का ज्ञान अपेक्षित है। किन्तु गणित के अभाव में गोल का ज्ञान भी सम्भव नहीं है। अर्थात् गणित और गोल दोनों अन्योन्याश्रय सम्बन्ध रखते है। अर्थात् गणित के बिना गोल तथा गोल के बिना गणित का ज्ञान नहीं हो सकता है।
पूर्व में ही इस विषय की जानकारी हुई है कि ग्रहस्पष्टीकरण के माध्यम से काल साधन करना ही सिद्धान्त कहलाता है। अथवा ग्रहसाधन के आधार पर काल साधन करना ही सिद्धान्त ज्योतिष का मुख्य उद्देश्य है। इन दोनों का महत्त्व तथा उन दोनों की अविकल्प अध्ययन की आवश्यकता को आचार्य भास्कर इस प्रकार वर्णित किये है –

भोज्यं यथा सर्वरसं विनाज्यं राज्यं यथा राजविवर्जितं च।
सभा न भातीव सुवक्तृहीना गोलानभिज्ञो गणकस्तथात्रा।।[9]

सभी रसों से युक्त भोजन घी (आज्य) के बिना जिस तरह जमता नहीं, राजा से रहित राज्य जिस तरह से अच्छा नहीं लगता है, अच्छे वक्ता से रहित सभा जिस तरह अच्छी नहीं लगती है उसी तरह गोल की जानकारी से रहित गणितज्ञ की स्थिति होती है। अर्थात् गोलज्ञान के बिना कालसाधन में गणित का कोई उपयोग नहीं।

ज्योतिश्शास्त्रफलं पुराणगणकैरादेश इत्युच्यते
नूनं लग्नबलाश्रितः पुनरयं तत्स्पष्टखेटाश्रयं
ते गोलाश्रणियोन्तरेण गणितं गोलोपि न ज्ञायते
तस्माद्यो गणितं न वेत्ति स कथं गोलादिकं ज्ञास्यति।।[10]

भास्कराचार्य की इस उक्ति में ज्योतिष शास्त्र के अनेक घटकों का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध स्पष्ट रूप से वर्णित है। इस उक्ति में सिद्धान्त का लक्षण भी देखने को मिलता है साथ ही ज्योतिष के विभिन्न अंगों का उद्देश्य भी स्पष्ट हो जाता है।

ज्योतिष शास्त्र का मुख्य उद्देश्य आदेश है। वह आदेश काल का भी हो सकता है तथा फल का भी। फल से सम्बन्धित जो फल होता है उसका आधार लग्न ही होता है। लग्न का साधन स्पष्ट ग्रहों के बिना नहीं हो सकता है। स्पष्ट ग्रह गोल को आश्रित करते है। अर्थात् गोल के ज्ञान के अभाव में ग्रह का साधन नहीं किया जा सकता है। गोल का ज्ञान गणित के अभाव में नहीं हो सकता है। अतः जो गणित नहीं जानता है वह गोल का ज्ञाता नहीं हो सकता है। इसी उक्ति से स्पष्ट हो जाता है कि ज्योतिष के सभी विषय एक दूसरे पर आश्रित है तथा अधिकांश आधार विषय सिद्धान्त ज्योतिष के ही है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. सिद्धान्त शिरोमणि - गणिताध्याय, स्पष्टाधिकार, श्लोक.१
2. सूर्यसिद्धान्त – स्पष्टाधिकारः, श्लोक संख्या – १४
3. वृहत्संहिता – शास्त्रोपनयनाध्याय, श्लोक - ९
4. सिद्धान्तशिरोमणि – कालमानाध्याय, श्लोक - ६
5. सूर्यसिद्धान्त – स्पष्टाधिकार, श्लोक-१२
6. ग्रहलाघवम् – मध्यमाधिकार, श्लोक-१६
7. सिद्धान्तशिरोमणि – कालमानाध्याय, श्लोक -७
8. सिद्धान्तशिरोमणि – कालमानाध्याय, श्लोक -८
9. सिद्धान्तशिरोमणि – गोलाध्याय, श्लोक- ३
10. सिद्धान्तशिरोमणि – गोलाध्याय, श्लोक- ६